सम्पादकीय

संस्थान की लोकप्रिय शोधपत्रिका प्रत्नकीर्ति का यह अङ्क प्रस्तुत करते हुए प्रसन्नता है, पर विलम्ब के लिये खेद भी है। पत्रिका में प्रकाशानार्थ शोध-आलेख तो पर्याप्त भेजे जाते हैं, पर लेखन मानक के अनुकूल नहीं होता है, जिसके कारण अनेक लेखों को वापस लौटा दिया जाता है। कुछेक आलेख ही वापस सही हो, पत्रिका के अनुरूप प्रविधि का पालन कर, प्रूफ की अशुद्धि ठीक कर वापस आते हैं। प्राप्त आलेखों को समीक्षकगण द्वारा समीक्षित हो, सम्पादक मण्डल के सदस्यों द्वारा सुसम्पादित होकर प्रकाशनानुकूल प्रस्तुत किया जाता है।

प्रत्नकीर्ति के 05.02 का यह अङ्क कुछ विशिष्टतायें लिये हुए है। पत्रिका के आरम्भ में शोधपत्र के अन्तर्गत रूपा भाटी का शोधपत्र *Tracing Magan and Its People via Indus Seals* सिन्धु लिपि और उससे सम्बन्धित मुहरों पर केन्द्रित है। प्राचीन व्यापार मार्गों पर अन्य स्थानों के नामों के साथ स्थानों के नामों से सम्बन्धित मुहरों पर आधारित यह अध्ययन उन मुहरों पर केंद्रित है जिनमें स्पष्ट संस्कृत व्याख्याओं का अभाव है। यह अध्ययन 48 मुहरों के नमूनों का ग्लिफ़ प्लेसमेंट पैटर्न द्वारा विश्लेषण प्रस्तुत करता है। "मुद्रा" की एकमात्र पहचान इस सम्भावना को बढ़ाती है कि अन्य भौगोलिक सन्दर्भ लिपि के भीतर अस्पष्ट रह सकते हैं। इसका विस्तृत विवेचन इस शोधपत्र में देखने को मिलेगा।

हिमाचल प्रदेश के काँगड़ा जिले में पुरातात्त्विक एवं ऐतिहासिक महत्त्व के शिव मन्दिर की दक्षिणी और उत्तरी दीवारों पर मन्दिर निर्माण से सम्बन्धित प्रस्तर शिलाओं पर दो अभिलेख उत्कीर्ण हैं। अभिलेखों के विवरणों के आधार पर इनका काल ही मन्दिर निर्माण का काल भी सिद्ध होता है, जो तेरहवीं शताब्दी का माना जाता है। अभिलेखीय विवरणों में इस स्थान का नाम कीरग्राम उल्लिखित है, जिससे इस क्षेत्र में तिब्बत मूल की कीर जाति का आधिपत्य स्पष्ट प्रामाणित होता है। इस अभिलेख का विस्तृत आकलन कर रहे हैं डॉ॰ राजीव कुमार 'त्रिगर्ती' अपने शोध आलेख *कीरग्राम के दो अभिलेख* में।

वेदवीर आर्य ने अपने शोधपत्र *The Chronology of Indian Civilization: An Archaeoastronomical Study* के अन्तर्गत भारतीय सभ्यता को दुनिया की सबसे पुरानी सतत सभ्यताओं में से एक माना है, जो लगभग 16400 वर्षों तक फैली हुई है तथा लगभग 14400 ईसा पूर्व से चली आ रही है। इसकी उत्पत्ति सरस्वती नदी क्षेत्र में देखी जा सकती है, जहाँ कृषि आधारित समाज का उदय होना शुरू हुआ। क्योंकि 16000 ईसा पूर्व के आसपास दक्षिण-पश्चिम मानसून नियमित हो गया, जो अन्तिम हिमयुग के समापन के साथ मेल खाता था। इस विकास ने भारतीय उपमहाद्वीप में मौसमों के चक्रीय पैटर्न के प्रारम्भ को चिह्नित किया। 2001 से 2006 तक किए गए उत्खनन से 9000 ईसापूर्व से वनस्पतियों को जलाने जैसी प्रारम्भिक मानवीय गतिविधियों के साक्ष्य सामने आए हैं। पैलिनोलॉजिकल अध्ययन से क्षेत्र के वनस्पति इतिहास, जलवायु परिवर्तन और मध्य गङ्गा के मैदान पर प्रारम्भिक होलोसीन अवधि के दौरान प्रारम्भिक कृषि प्रथाओं के बारे में भी जानकारी मिलती है। अहमदाबाद स्थित भौतिक अनुसन्धान प्रयोगशाला द्वारा की गई रेडियोकार्बन डेटिंग इन निष्कर्षों का समर्थन करती है और क्रमिक तलछट के जमाव के लिए लगभग 10000 साल की अवधि प्रदान करती है।

रङ्गमञ्च और अभिनय से सम्बन्धित आचार्य भरत की रचना के बाद नाट्य, रङ्गमञ्च और नाट्यकृतियाँ आकर नाट्यशास्त्र ''पञ्चम वेद'' कहा जाता है। मानवीय संवेदनाओं को अभिव्यक्त करने के लिए आरम्भ में नृत्य का तथा भाव-भङ्गिमाओं और संवादों से युक्त अभिनय का प्रचलन हुआ। नाट्य के विकास की यह यात्रा एकाङ्की नाटक कृतियों के रूप में आरम्भ हुई होगी, किसी घटना के आधार पर कहानी के कथ्य और तथ्य की नृत्य, वाद्य और गायन आदि के द्वारा प्रस्तुति एकाङ्की रूपकों के रूप में ही हुई। एकाङ्की रूपकों और विशेषकर संस्कृत पत्रिकाओं में प्रकाशित एकाङ्की रूपकों का विवेचन और विश्लेषण अमर दयाल और लाला शङ्कर गयावाल के शोधपत्र *संस्कृत पत्रिकाओं में प्रकाशित एकाङ्की रूपक: एक अवलोकन एवं सङ्कलित एकाङ्की रूपकों की सूची* में उपलब्ध है। इस शोधपत्र में सङ्कलित एकाङ्की रूपकों की सूची शोधार्थियों के लिये नई वस्तु होगी।

राघव कुमार झा का शोधपत्र *रघुवंश के दुर्घट प्रयोग* में कवियों द्वारा अपनी रचनाओं में शास्त्र-कौशल और शब्द-चमत्कार के कारण अनेक विशिष्ट पदों का प्रयोग किया गया है। रघुवंश महाकाव्य में प्रयुक्त ऐसे प्रयोगों की व्युत्पत्ति और सिद्धि को तदनुरूप प्रस्तुत करने का सुन्दर प्रयास किया गया है।

लोक में प्रचलित व्यवहार की अभिव्यक्ति विभिन्न लोकोक्तियों के माध्यम से करने की सुन्दर परम्परा का विशद् विवेचन डॉ॰ मधुबाला शर्मा के शोध-आलेख *संस्कृतकाव्येषु लोकोक्तिप्रयोगः* में देखने को मिलेगा। लेखिका ने अनेक प्रसिद्ध विद्वानों, ग्रन्थों एवं लोक में प्रचलित लोकोक्तियों का बहुत सुन्दर सङ्ग्रह प्रस्तुत किया है। लोकोक्तियाँ वस्तुतः गागर में सागर भरने या *भारवेरर्थगौरवम्* की बात को चरितार्थ करती हैं।

''वाकोवाक्यम्/बहसो मुबाहिस'' के अन्तर्गत जयपुर के ख्यातिलब्ध संस्कृत विद्वान्, अनेक ग्रन्थों के प्रणेता, कवि, रचनाकार, समीक्षक और सद्यःकाव्यकार प्रो॰ ताराशङ्कर पाण्डेय की *काव्य के राजपथ पर मेरे दो कदम* में उनकी काव्ययात्रा की झाँकी देखने को मिलेगी।

कृति-परिचय/रिव्यू, समीक्षा में श्री वेङ्कटेश्वरशास्त्री द्वारा रचित 'बलवन्तसिंहपुत्रजन्ममहोत्सवः' — पाँच अङ्कों की नाट्यकृति है। ब्रिटिश शासन में यह नीति थी कि जिस राजा के औरस पुत्र नहीं होते थे, ऐसे राज्य को 'खालसा' घोषित कर अंग्रेज अपने राज्य में मिला लिया करते थे। जाट राजा बलवन्तसिंह की भी सन्तान नहीं थी अतः उन्होंने अपने प्रिय हितैषी गुर्जर धाऊ गुलाबसिंह के यहाँ जन्मे पुत्र को अपने पुत्र के रूप में प्रचारित करवाया। इस नाटक को अंग्रेजों को जताने हेतु प्रसारित करवाया गया कि बलवन्तसिंह के पुत्र का जन्म हो गया है। "पुत्रजन्ममहोत्सवः" के मञ्चन से भरतपुर-राज्य अंग्रेजी शासन में विलय होने से सुरक्षित रहा। अपने राज्य की रक्षा का यह अपूर्व एवं सफल प्रयास *राज्य-रक्षण का अपूर्व प्रकल्प – बलवन्तसिंहपुत्रजन्ममहोत्सव नाटक* नामक शोधपत्र डॉ॰ महेश चन्द गुर्जर द्वारा लिखा गया है।

साथ ही सुप्रसिद्ध संस्कृत विद्वान, स्मृतिशेष प्रभुनाथ द्विवेदी जी द्वारा संस्थान से प्रकाशित *उमरावजान-अदा* — उर्दू-उपन्यास का श्वेतकेतु द्वारा किये गये संस्कृत-अनुवाद की हस्तलिखित समीक्षा और अनुवादक की अभिव्यक्ति लेखक और पाठक के अन्तर्मन की व्यथा को उजागर करती है।

संस्थान की गतिविधियों में, संस्थान से प्रकाशित पुस्तक "गीतसीतापतिः" — रायचरन कामल द्वारा सम्पादित — का लोकार्पण, विश्रुत विद्वान् एवं संस्थान के गतितिधियों के

परामर्शक आदरणीय प्रोफेसर राधावल्लभ त्रिपाठी जी के द्वारा ऑनलाइन किया गया, जिसमें देश के कई मूर्धन्य विद्वद्गण, शोधार्थी एवं संस्थान के पदाधिकारियों की गरिमामयी उपस्थिति रही।

ध्यातव्य है कि शोधपत्र लिखने से पहले सुप्रसिद्ध विद्वानों की रचनाओं, संस्थाओं एवं प्राच्यविद्या केन्द्रों के प्रकाशनों की जानकारी, शोध की गुणवत्ता के साथ-साथ नये प्रतिमान को स्थापित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। विद्वानों की रचनायें, पुस्तकें, संस्थानों का प्रकाशन, वहाँ से प्रकाशित पत्रिकायें हमारा मार्गदर्शन करती हैं। इस दृष्टि से केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, दिल्ली एवं तिरुपति तथा केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय के विभिन्न परिसरों जैसे लखनऊ, जम्मू, पुरी, प्रयागराज, जयपुर, त्रिशूर, श्रृङ्गेरी, बालाहार, भोपाल, नासिक, अगरतला, देवप्रयाग जैसे संस्थानों से प्रकाशित साहित्य का अवलोकन करना चाहिये। हमारा सभी सुधी लेखकों और पाठकों से निवेदन है कि भारतीय ज्ञान-परम्परा को आगे बढ़ाते हुए संस्कृत वाङ्मय तथा प्राच्यविद्या के सागर से नित्य-नूतन गवेषणा को आलोकित करें।
इति शम्...

31 दिसम्बर, 2024

लालाशङ्कर गयावाल
उमेश कुमार सिंह